International Journal of Advanced Research in Education and TechnologY(IJARETY)

| ISSN: 2394-2975 | www.ijarety.in| A Bi-Monthly, Double-Blind Peer Reviewed & Referred Journal |

|| Volume 1, Issue 3, November-December 2014 ||

DOI:10.15680/IJARETY.2014.0103018

भारतीय परिदृश्य में संघवाद का बदलता स्वरूप

Dr. Sucheta Gupta

Lecturer in Political Science, Government College Bibirani, (Alwar) Rajasthan, India

संघवाद लोकतंत्र की ऐसी संघीय व्यवस्था है, जहाँ राजनीतिक प्रणाली के अन्तर्गत शासक और जनता परस्पर मिलकर प्रतिद्वन्द्विता और अन्तर्विरोध के बीच एक प्रकार का शासन संचालन करते हैं। संघवाद में शक्तियों के विभाजन के लिए संविधन आवश्यक होता है। संघवाद के कार्य करने के नियमों को क्रियाशील बनाने के लिए संघ और उसमें शामिल इकाइयों के बीच संवैधनिक व्यवस्था के प्रति मतैक्य का होना आवश्यक है। इस प्रकार के मतैक्य के लिए एक आम मूल्य प्रणाली की परस्पर स्वीकृति का तत्त्व जरूरी होता है।

I. भारतीय संघ व्यवस्था

भारतीय संघ व्यवस्था को लेकर संविधान निर्माताओं ने व्यापक चर्चा की। संविधान निर्माताओं के समक्ष यह प्रमुख मुद्धा था कि संविधान का स्वरूप संघात्मक हो या एकात्मक। भारतीय संविधान निर्माताओं ने एक ऐसे स्वरूप की चर्चा की, जिसके बारे में कहा जाता है कि भारतीय संविधान का बहिरंग संघात्मक और अन्तरंग एकात्मक है। भारतीय संविधान के प्रथम अनुच्छेद में कहा गया है भारत राज्यों का एक संघ होगा। भारतीय संविधान में जहाँ कुछ पूर्ण संघवाद के लक्षण पाए गए हैं, वहीं पर एकात्मक राज्य के भी कुछ लक्षण विद्यमान हैं। संविधान निर्माताओं की मंषा भारत में संघात्मक शासन व्यवस्था की स्थापना करना था, लेकिन संविधान में कहीं भी संघ शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। संघ के स्थान पर राज्यों को संघ शब्द के प्रयोग पर प्रारूप समिति के अध्यक्ष डॉ अम्बेडकर ने संविधान सभा में यह स्पष्टीकरण दिया था कि प्रारूप समिति के द्वारा इस शब्द का प्रयोग यह स्पष्ट करने के लिए किया गया है कि यद्यपि भारत एक संघ राज्य है, लेकिन यह संघ राज्य किसी प्रकार से राज्यों के पारस्परिक समझौते का परिणाम न होने के कारण किसी भी राज्य को संघ से पृथक होने का अधिकार नहीं है।

भारतीय संघ का स्वरूपः विवादास्पद बिन्दु
भारतीय संविधान संघात्मक शासन व्यवस्था की स्थापना करता है। के.सी. व्हीयर के अनुसार "भारत में मुख्यतः एकात्मक राज्य हैं जिनमें संघीय विशेषताएँ नाममात्र की हैं। भारत का संविधान संघीय कम और एकात्मक अधिक है।"

प्रो. एलेक्जेण्ड्रोविज के अनुसार, "भारत एक सच्चा संघ है, तथापि अन्य संघों की भाँति उसकी अपनी कुछ निराली विशेषताएँ हैं। भारत को अर्द्धसंघात्मक कहना मिथ्या है।"

भारतीय संविधान की संघात्मक व्यवस्था पर प्रकाश डालते हुए प्रो० पायली ने लिखा है कि "भारत के संविधान का ढाँचा संघात्मक है, किंतु उसकी आत्मा एकात्मक है।"

डॉ. सुभाष कष्यप का विचार है कि संविधान दोहरे शासनतंत्र की स्थापना करता है। सरकार की दो श्रेणियाँ हैं संघ की सरकार और अवयवी राज्यों की सरकारें। संविधान ने संघ सरकारों और राज्य सरकारों के बीच शक्तियों का वर्णन किया है। संघवाद के इन बहिरंग लक्षणों के बावजूद भारतीय संविधान का प्रधान स्वर एकात्मकता का है। संविधान के विद्वान डॉ. जी. एन. जोशी का कहना है, "भारत संघ राज्य नहीं. अपितु अर्द्धसंघ है और इसमें कतिपय एकात्मकता के भी लक्षण हैं।"

संविधान सभा में परिचर्चा के दौरान डॉ. बी. आर. अम्बेडकर का कथन था कि "यह एक संघीय संविधान है। यह एक दोहरे शासन शासनतंत्र की स्थापना करता है जिसमें केंद्र में संघीय सरकार तथा उसके चारों ओर परिधि में राज्य सरकारें हैं, जो संविधान द्वारा निर्धारित दोनों क्षेत्रों में सर्वोच्च सत्ता का प्रयोग करती हैं।"

इस प्रकार संविधान अंगीकृत किये जाने से लेकर आज तक भारतीय संविधान का स्वरूप विवाद का विषय बना हुआ है। भारतीय संविधान निर्माताओं का लक्ष्य एक व्यावहारिक संविधान का निर्माण करना था। इसलिए उन्होंने प्रचलित संघीय संविधान से वही लिया, जो उनको अपने लिए व्यावहारिक लगा।

| ISSN: 2394-2975 | www.ijarety.in| A Bi-Monthly, Double-Blind Peer Reviewed & Referred Journal |

|| Volume 1, Issue 3, November-December 2014 ||

DOI:10.15680/IJARETY.2014.0103018

II. भारतीय संघवाद के प्रति दृष्टिकोण

परम्परागत दृष्टिकोणः संघवाद के परम्परागत दृष्टिकोण का अध्ययन एक औपचारिक संवैधानिक तरीके से किया गया है। जो भारतीय संघ को रूप की दृष्टि से संघीय और सारतत्व के अनुसार एकात्मक बताता है। वह उसे अर्द्धसंघीय यानि एक सुदृढ़ केंद्र वाला संघ मानता है। इस दृष्टिकोण के प्रमुख विवाद बिन्दु हैं, शक्तियों का केंद्र और राज्यों के बीच तीन सूचियों के द्वारा विभाजन, जिससे बची हुई शक्तियाँ केंद्र को सौंपी गई। संशोधन की प्रक्रिया, राज्यपाल का स्थान और भूमिका अनु0 352, 356, 360 के अन्तर्गत आपातकालीन प्रावधान, न्यायिक समीक्षा संबंधी उच्चतम न्यायालय के अधिकार और एक ही नागरिकता जैसी बाह्य बातें। इसमें केंद्र व राज्य की शक्तियों के बराबर अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत लाने का प्रयास किया गया है। अशोक चन्द्रा जैसे विद्वान ने इसीलिए कहा है कि "भारतीय प्रणाली" गौंण संघीय विशेषताओं से युक्त एकात्मक है"।

व्यवहारवादी दृष्टिकोणः व्यवहारवादियों के केंद्र बिन्दु केंद्र और राज्यों के बीच सत्ता संबंधों का अध्ययन हो गया। व्यवहारवादी संघ का अध्ययन उसके व्यावहारिक पहलू को ध्यान में रखकर करते हैं। इस प्रकार का अध्ययन राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और प्रक्रियात्मक निर्धारकों के प्रकाश में होता है। इस प्रकार केंद्र राज्य संबंधों का अध्ययन एक गतिशील प्रक्रिया के रूप में शक्तियों के विभाजन और क्षेत्रीय और उपक्षेत्रीय तनावों के द्वारा उत्पन्न असंतुलन के कारणों तथा परिणामों के संबंध में किया जाता है।

III. भारतीय संघ का निर्माण

जिस समय संविधान सभा भारत के संघीय ढाँचे के संदर्भ में मतैक्य लाने की कोशिश कर रही थी, अमेरिका सहकारी संघवाद की अवस्था से गुजर रहा था। अमेरीकी संघवाद के विपरीत भारत में जब से संघवाद के प्रयोग की प्रक्रिया आरंभ हुई, तभी से इसमें केंद्रीकृत संघ की विशेषताएँ मौजूद थी। इसका कारण था खाद्यान्नों का अभाव, साम्प्रदायिक दंगे, देश का टुकड़ों में विभाजन और कम्युनिस्ट विद्रोह का विचित्र संदर्भ जो अमेरिका में नहीं था। पूँजीवादी मार्ग के आधार पर सामाजिक क्रांति के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए एक शक्तिशाली केंद्र भी आवश्यक था। अनेक राजनीतिक वैज्ञानिकों ने भारतीय संघ को "सहकारी संघ" के रूप में चित्रित किया है। "बिर्च के अनुसार सहकारी संघवाद की विशेषताएँ हैं प्रधान और क्षेत्रीय सरकारों की केंद्रीय सरकार पर आशिक निर्भरता और यह तथ्य की प्रधान सरकारें अनुदानों के जरिए बहुधा उन मामलों में गतिविधियों को प्रोत्साहित करती हैं, जो संविधान के अन्तर्गत क्षेत्रीय सरकारों को सौंपे गये हैं। इसका अर्थ यह है कि एक शक्तिशाली केंद्रीय सरकार का आवश्यक परिणाम यह नहीं होता है कि क्षेत्रीय सरकारें कमजोर पड़ जाती हैं कार्ल जे. फेडरिक ने इस संबंध में लिखा है कि "भारत में सहकारी संघवाद ने एकीकरण और विभेदीकरण दोनों ही दिशाओं में काम किया है।"

भारतीय संघीय ढाँचे का झुकाव एक शक्तिशाली केंद्र की ओर है। जिसमें भारतीय संसद को विधायी क्षेत्र में सर्वाधिक अधि कार होते हैं तथा केंद्रीय कार्यपालिका की इच्छानुसार राज्यपालों की नियुक्ति के अधिकार होते हैं। राज्यपाल राष्ट्रपति की मर्जी के अनुसार ही पद पर रहते हैं तथा केंद्रीय कार्यपालिका के आदेशों का पालन करते हैं। वित्तीय आयोग की सिफारिशों के अनुसार वित्तीय बँटवारें होते हैं और सहायता अनुदान दिये जाते हैं। साथ ही एक अखिल भारतीय प्रशासनिक सेवा तथा एक एकल न्यायिक प्रणाली की भी व्यवस्था है। केंद्र के साथ राज्यों के सौदा करने की ताकत आन्दोलनों या अन्य कारणों से बढ़ी है। भारतीय संघ के क्रमिक विकास के दौरान राज्यों की संख्या बढ़ी है। भारतीय संसद को राज्यों की सीमाओं को परिवर्तित करने का अधिकार है या नये राज्यों का निर्माण करने का अधिकार है। वर्तमान भारत 28 राज्य और सात केंद्र प्रशासित क्षेत्रों का संघ है। संविधान निर्माताओं ने भारत को एक संघ नहीं कहा, क्योंकि वे किसी प्रचलित सिद्धांत या संघ के मॉडल पर निर्भर नहीं थे। उन्होंने माना कि भारतीय समस्याएँ विशिष्ट हैं और ऐतिहासिक क्रम में अन्य संघों से उनका सामना नहीं हुआ है।

टी. टी. कृष्णामाचारी का विचार था कि चूंकि संधवाद स्थिर अर्थवाली एक निश्चित अवधारणा नहीं है। इसलिए उस पर निर्भर नहीं रहा जा सकता।

भारतीय संविधान में संघात्मक लक्षणः वास्तव में संघवाद का सिद्धांत सीमित सरकार के सिद्धांत से संबंधित है। संघवाद राष्ट्रीय सार्वभौमिकता और राज्यों के अधिकारों की पृथक मांगों में जिस साधन द्वारा समन्वय और एकता स्थापित करता है, वह है लिखित संविधान, जिसके द्वारा सार्वभौमिकता संबंधी शक्तियों का विभाजन केंद्रीय एवं राज्यों की सरकारों के मध्य किया जाता है। संघवाद का मूल आधार शक्तियों का विभाजन ही है।

भारतीय संविधान में संघात्मक व्यवस्था के निम्न महत्त्वपूर्ण लक्षण उपस्थित हैं:

| ISSN: 2394-2975 | www.ijarety.in| A Bi-Monthly, Double-Blind Peer Reviewed & Referred Journal |

|| Volume 1, Issue 3, November-December 2014 ||

DOI:10.15680/IJARETY.2014.0103018

1. संविधान की सर्वोच्चता: संघवाद की प्रथम शर्त लिखित संविधान है। डायसी ने कहा है कि "एक संघीय राज्य अपना अस्तित्व उस लेखपत्र से प्राप्त करता है, जिसके द्वारा उसकी स्थापना हुई है। संघीय राज्य में लिखित संविधान सर्वोच्च कानून होता है।" भारतीय संविधान इस देश का लिखित सर्वोच्च कानून है। इसके उपबन्ध सभी सरकारों पर बाधयकारी हैं और किसी भी
सरकार द्वारा संविधान का उल्लंघन नहीं किया जा सकता। भारत में कोई भी शक्ति संविधान से ऊपर नहीं है।

2. शक्तियों का विभाजन अन्य संघों की भाँति भारतीय संविधान में भी शक्तियों का विभाजन किया गया है। यह निर्माण कनाडज्ञ के संविधान से प्रभावित है। समवर्ती सूची जो कि ऑस्ट्रेलिया के संविधान की देन है, शक्तियों के विभाजन के तीन स्तर हैं यानि तीन सूचियाँ है:

क. संघ सूची: संघ सूची में 97 विषय सम्मिलित हैं। जिनमें प्रमुख हैं प्रतिरक्षा, सशस्त्र सेनाएँ, परमाणु शक्ति, विदेशी कार्य, राजनयिक प्रतिनिधित्व, युद्ध एवं शान्ति, डाक, तार-बेतार, दूरभाष, संचार, सिक्का, टंकण, विदेशी विनिमय, विदेशी ऋण, रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया, सीमा शुल्क इत्यादि विषय, जो संघ के लिए समान हित आवश्यक हैं। इस सूची में वर्णित विषय पर केवल संसद को ही कानून निर्माण की शक्ति है।"

ख. राज्य सूची: मूल संविधान के अन्तर्गत कुल 66 विषय रखे गए थे। लेकिन 42वें संवैधानिक संशोधन (1976) द्वारा राज्य सूची के चार विषय (शिक्षा, वन, जंगली जानवरों और पक्षियों की रक्षा तथा नाप-तौल) राज्य सूची से हटाकर समवर्ती सूची में कर दिए गए। इनमें प्रमुख विषय हैं पुलिस, न्याय, जेल, स्थानी स्वशासन, सार्वजनिक स्वास्थ्य. कृषि सिचाई और सड़कें इत्यादि। राज्य सूची में शामिल विषयों के संबंध में कानून बनाने का अधिकार केवल राज्य विधानमण्डल को होता है।

ग. समवर्ती सूची: इस सूची में वे विषय रखे गए हैं, जिनका महत्त्व क्षेत्रीय और संघीय दोनों ही दृष्टियों से है। मूल संविधान के अनुसार इस सूची में 47 विषय थे, लेकिन 42वें संवैधानिक संशोधन के द्वारा राज्य सूची के चार विषय समवर्ती सूची में शामिल कर दिये गए और एक नवीन विषय जनसंख्या नियंत्रण और परिवार नियोजन समवर्ती सूची में जोड़ा गया। इस सूची के प्रमुख विषय हैं।" फौजदारी, विधि और प्रक्रिया, निवारक निरोध विवाह और विवाह-विच्छेद, कारखाने, श्रमिक संघ औद्योगिक विवाद, सामाजिक सुरक्षा और सामाजिक बीमा शिक्षा, जनसंख्या नियंत्रण और परिवार नियोजन आदि।

समवर्ती सूची के विषयों पर राज्य तथा केंद्र दोनों का क्षेत्रधिकार है। किसी विषय पर यदि केंद्र सरकार का कोई व्यवस्थापन नहीं है, तो राज्य के विधानमण्डल कानून बना सकते हैं। किंतु यदि संसद कभी कानून बनाए, तो राज्य द्वारा पारित विधि को शून्य करने में सक्षम होगी। अपवाद यह है कि अनुच्छेद 254 के अनुसार यदि समवर्ती सूची पर राज्य द्वारा कोई विधि बनाई गई है और राष्ट्रपति द्वारा अनुमति प्राप्त हो चुकी है, तो यह विधि संसद की विधि के बावजूद भी लागू की जायेगी। अवशिष्ट अधिकार, जो कनाडा के संविधान की तरह केंद्र में निहित है। अनुच्छेद 249 यह व्यवस्था करती है कि राज्यसभा बहुमत से संसद द्वारा राज्य सूची के किसी भी विषय पर कानून बना सकती है। अनुच्छेद 250 के अनुसार संकटकाल में भी संसद राज्य सूची के विषयों पर कानून बना सकती है। इसी प्रकार अनुच्छेद 252 के अनुसार दो या दो से अधिक राज्यों के निवेदन पर संसद राज्य सूची के विषयों पर व्यवस्थापन कर सकती है।

3. स्वतंत्र, सर्वोच्च न्यायालय भारतीय संविधान के संरक्षक के रूप में कार्य करने के लिए एक स्वतंत्र सर्वोच्च न्यायपालिका की स्थापना की गयी हैं। संविधान द्वारा एक सर्वोच्च न्यायालय और राज्यों में उच्च न्यायालयों की भी व्यवस्था की गयी है।

4. उच्च सदन का राज्य सदन होना: भारतीय संसद का उच्च सदन अर्थात राज्य सभा राज्यों का सदन है, वह राज्यों का प्रतिनिधित्व करता है। यद्यपि यह सच है कि यह प्रतिनिधित्व समानता के आधार पर न होकर जनसंख्या के आधार पर होता है।

5. संशोधन प्रणाली: भारतीय संविधान में संशोधन प्रणाली पूर्णतया संघीय प्रक्रिया के अनुरूप है। कतिपय संशोधन विधेयकों को राष्ट्रपति के समक्ष उनकी अनुमति का लिए प्रस्तुत करने से पूर्व कम से कम आधे राज्यों के विधान मण्डलों के संकल्प द्वारा स्वीकृति प्राप्त करना आवश्यक है। यदि आधे राज्यों के विधानमण्डलों की स्वीकृति प्राप्त न हो, तो संविधान के अनेक महत्त्वपूर्ण अंगों में संशोधन नहीं किया जा सकता।"

इन लक्षणों से यह स्पष्ट है कि भारतीय संविधान एक पूर्ण संघात्मक प्रणाली की स्थापना करता है।

भारतीय संविधान के एकात्मक लक्षण
संविधान द्वारा शक्तिशाली केंद्र की स्थापना: भारतीय संविधान में कुछ ऐसे भी तत्व हैं, जो कि भारतीय संविधान को एकात्मक स्वरूप भी प्रदान करते हैं। ये एकात्मक तत्व भारतीय संविधान के बहिरंग में भी है और भारतीय संविधान के अंतरंग में भी है। भारतीय संविधान के अंतरंग में उपस्थित तत्वों में से भारतीय संघ राज्य क्षेत्रों के नागरिकों के लिए इकट्ठी नागरिकता रखी गई है। शक्तियों के

| ISSN: 2394-2975 | www.ijarety.in| A Bi-Monthly, Double-Blind Peer Reviewed & Referred Journal |

|| Volume 1, Issue 3, November-December 2014 ||

DOI:10.15680/IJARETY.2014.0103018

विभाजन का संतुलन केंद्र की तरु काफी है। भारतीय संविधान केंद्र और राज्य दोनों को संचालित करता है अर्थात् केंद्र व राज्य दोनों के लिए एक ही संविधान रखा गया है। केंद्रीय सरकार राज्यों की सीमाओं के परिवर्तनों में सशक्त है। एकीकृत न्याय व्यवस्था रखी गई है। संकटकाल में एकात्मक शासन हो जाता है। अनु0 352, 356, 360 इन तीनों शक्तियों का प्रयोग राष्ट्रपति द्वारा क्रमशः राष्ट्रीय आपातकाल, राज्यों में राष्ट्रपति शासन और वित्तीय आपातकाल लगाने के लिए किया जाता है। राज्यों में केंद्र का सीधा हस्तक्षेप व नियंत्रण प्राप्त हो जाता है। राज्यों के राज्यपालों की नियुक्ति, राज्यों का राज्यसभा में समान प्रतिनिधित्व नहीं इत्यादि ऐसी विशेषताएँ हैं जहाँ शासन का स्वरूप एकात्मक हो जाता है।"

भारतीय संविधान के बहिरंग में उपस्थित एकात्मक तत्वः संवैधानिक प्रावधानों के बावजूद कतिपय ऐसे राजनीतिक तत्त्वों का उदय और विकास भारत की राजनीतिक व्यवस्था में दिखाई देता है, जिनमें एकात्मकता में वृद्धि हुई है और केंद्रीकृत संघवाद का चलन हुआ है। जिनमें कुछ प्रमुख तत्त्व हैं। प्रधानमंत्रियों के गरिमामयी व्यक्तित्व ने भी केंद्र को मजबूत करने का कार्य किया है। जिसके कारण केंद्र के समकक्ष राज्य नेताओं का व्यक्तित्व फीका पड़ने लगा। उनके प्रभाव के आगे किसी का विरोध टिकता ही नहीं था। जवाहरलाल नेहरू और इन्दिरा गांधी ऐसे ही प्रधानमंत्री थे। भारतीय राजनीति का एक पहलू कांग्रेस के इर्द-गिर्द घूमता रहा। आजादी के बाद अधिकतर एक ही पार्टी का एकछत्र शासन होना भी राज्य के एकात्मक स्वरूप की वृद्धि में सहायता प्रदान करता है। देश के विकास में अहम भूमिका निभाने वाला योजना आयोग जिसको सुपर कैबिनेट भी कहा जाता है, का केंद्रीकृत प्रभाव रहा है। इसका कारण है कि प्रधानमंत्री, इसका अध्यक्ष और केंद्रीय मंत्रीमण्डल और उसके कार्यों को अधिक प्रभावी बनाने के लिए कुछ वरिष्ठ मंत्री भी आयोग से सम्बद्ध होते हैं। इसके विषय में के० सन्थानम ने कहा है कि "नीति और वित्त संबंधी मामलों में राज्य की स्वायत्तता को एक छाया का रूप प्रदान कर दिया।"

इसी प्रकार राष्ट्रीय विकास परिषद भी देश की आर्थिक नीतियों के निर्धारण में अत्यंत प्रभावशाली निकाय है। व्यवहार में राज्यों की योजनाओं के संबंध में निर्णय राष्ट्रीय विकास परिषद् में लिये जाते हैं। जिसमें राज्यों की स्थिति केंद्रीय सरकार के एजेण्ट के समतुल्य हो गई है।

1989 के बाद भारत में अल्पमतीय और गठबंधन सरकारों का सिलसिला प्रारंभ हुआ। अल्पमतीय और गठबंधन सरकारों का नेतृत्व करने वाला प्रधानमंत्री आमतौर से दुर्बल होता है और फिर जवाहर लाल नेहरू और इन्दिरा गांधी को छोड़कर अटल बिहारी वाजपेयी के बाद प्रधानमंत्री करिश्मायी व्यक्तित्व के धनी नहीं रहे। एक दलीय प्रधान व्यवस्था का अन्त हुआ और राज्यों में क्षेत्रीय दलों के हाथों में सत्ता की बागडोर आई।" करूणानिधि, चन्द्रबाबू नायडू, जी. के. मूपनार, मुलायम सिंह यादव, नवीन पटनायक, ममता बनर्जी, लालू प्रसाद यादव, जैसे क्षेत्रीय किंग मेकर्स बन गए। उदारीकरण के दौर में योजना आयोग की भूमिका का हास हुआ। केंद्र में शासन की बागडोर 24 दलों के सम्मिलन से बने राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन और 12 दलों के गठबंधन वाले संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन के हाथों में आयी। केंद्रीय सरकार" के संचालन में प्रादेशिक नेताओं एवं प्रादेशिक दलों के बढ़ते हुए वर्चस्व के कारण देश सच्ची संघात्मक व्यवस्था की स्थापना के मार्ग पर बढ़ने लगा।

IV. व्यवहार में भारतीय संघवाद

भारत की राजनीतिक परिस्थितियों के साथ संघवाद के स्वरूप में भी परिवर्तन आता रहा है। भारतीय संघ व्यवस्था को राजनीतिक तत्त्वों के बदलते परिदृष्य में निम्न बिन्दुओं के द्वारा अध्ययन कर सकते हैं।"

1. केंद्रीकृत संघवाद का युग सन् 1950 से 1967 तक का समय केंद्रीय संघवाद का युग कहा जा सकता है। सन् 1950 से 1964 तक का भारतीय राजनीतिक युग 'नेहरू युग' कहलाता है। इस समय केंद्र तथा राज्यों के संबंध मधुर बने रहे। कुछ ऐसे लक्षणों का विकास हुआ, जिन्होंने भारत में विकेंद्रीकरण की प्रवृत्ति रोकने में मदद की। नेहरू, पटेल जैसे नेता केंद्र में मौजूद थे। प्रधानमंत्री के व्यक्तित्व का प्रभाव सभी पक्षों पर था। कोई राज्य, नेतृत्व विरोध करने की बात तो दूर, विरोध की बात सोच भी नहीं सकता है। इस काल में विकेंद्रीकरण की सशक्त प्रवृत्तियों के परिणामस्वरूप भारतीय संघवाद राजनीतिक समन्वयों और आर्थिक विकास के दोहरे उदेश्यों की पूर्ति का साधन बना।

2. सहयोगी संघवाद का युग चतुर्थ आम चुनाव (1967) के बाद शक्ति का संतुलन राज्यों की तरु झुका। कांग्रेस का एक छात्र शासन समाप्त हो गया। केंद्र में नेहरू जैसा व्यक्तित्व नहीं रहा और राष्ट्रीय विकास परिषद् में अनेक दलों के मुख्यमंत्री केंद्र विरोधी आवाज बुलन्द करने लगे। राज्य में नेहरू के बाद मुख्यमंत्री शक्ति के केंद्र बन गए और केंद्र को प्रभावित करने लगे। कांग्रेस दल के विभाजन (1969) के पश्चात् लोकसभा में शासक दल अल्पमत में आ गया, जिससे केंद्रीय नेतृत्व को राज्यों की मांगों के समक्ष झुकना पड़ा। 1967 के चुनावों के पश्चात् संघ व राज्यों के पारस्परिक संवैधानिक संबंधों के विषय में मतभेद काफी उग्ररूप में पहुँच गए। अधिकतर राज्यों में गैर कांग्रेसी दलों की सरकारें बनीं। राज्यपालों की नियुक्ति, सी. आर.पी.एफ. की तैनाती और भाषा के प्रश्न पर तीव्र मतभेद हुए।

| ISSN: 2394-2975 | www.ijarety.in| A Bi-Monthly, Double-Blind Peer Reviewed & Referred Journal |

|| Volume 1, Issue 3, November-December 2014 ||

DOI:10.15680/IJARETY.2014.0103018

इसके बावजूद केंद्र व राज्यों के मतभेद के अतिरिक्त आपसी सहयोग बना रहा। सहयोगी संघवाद के युग का सुत्रपात हुआ। सहयोगी संघवाद का प्रमुख लक्षण केंद्र और राज्यों की सरकारों की एक दूसरे पर निर्भरता है। इस व्यवस्था में केंद्रीय सरकार शक्तिशाली तो होती है, किंतु राज्यों की सरकारें भी अपने क्षेत्र में कमजोर नहीं होतीं। चौथे आम चुनाव के पश्चात् प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गांधी को मद्रास के श्री अन्नादुराई, उड़ीसा के आर. एन. सिंह देव, उत्तर प्रदेश के चरण सिंह तथा पंजाब के गुरनाम सिंह, जैसे गैर कांग्रेसी मुख्यमंत्रियों का विश्वास प्राप्त करने में सफलता मिली। यहाँ तक अक्सर ये मुख्यमंत्री अपनी कठिनाईयों में और अपने साझेदारों में मतभेद पैदा होने पर उनसे सलाह लेते थे। रजनी कोठारी के अनुसार, "जो लोग यह समझते थे कि राज्यों में भिन्न दलों की सरकारों के बनने से दल या पार्टी प्रणाली टूट जायेगी। उन्होंने एक तो कांग्रेस व प्रतिपक्षी दलों के नेताओं के पुराने संबंधों को भुला दिया और इस बात की उपेक्षा कर दी कि इस प्रणाली में इतना लोच है कि वह नेताओं और दलों को भी अपने अन्दर स्थान दे सकें"।

3. एकात्मक संघवाद का युग सन् 1971 के पंचम लोकसभा के निर्वाचन तथा 1972 के राज्य विधान सभाओं के निर्वाचनों और जनवरी 1980 के लोकसभा एवं बाद के विधान सभा चुनावों से दो तथ्य उभरे प्रथम, भारतीय राजनीति में श्रीमती गांधी और संजय गांधी ही सर्वमान्य नेता है तथा द्वितीय, कांग्रेस दल की जनता का नेतृत्व कर सकता है। इससे शक्ति का संतुलन केंद्र की तरु झुक गया। भारतीय संविधान में तीव्र गति से संशोधन किया गया और परिलक्षित यह हुआ कि भारत एकात्मकता की तरु उन्मुख हो रहा है। जुन, 1975 से मार्च, 1977 तक तो भारतीय राज्य एकात्मक राज्य में परिवर्तित कर दिया गया। समस्त शक्तियाँ केंद्र सरकार के हाथों में आ गई। राज्यों के मुख्यमंत्रियों की स्थिति केंद्रीय सरकार के सूबेदार की तरह हो गई। आपातकाल के दौरान मुख्यमंत्रियों का एक पैर अपने राज्य में रहता था तथा दूसरा दिल्ली में। श्री बहुगुणा और नन्दिनी सत्पथी जैसे कांग्रेसी मुख्यमंत्रियों को केंद्र सरकार के इशारों पर हटना पड़ा।

जनवरी 1976 में तमिलनाडु में और मार्च 1976 में गुजरात में राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया गया। तमिलनाडु में द्रविड़ मुनेत्र कड़गम और गुजरात में जनता मोर्चे का शासन था। जनवरी 1980 के लोक सभा चुनावों के बाद केंद्रीय सरकार ने नौ राज्यों की गैर-कांग्रेसी विधान सभाओं को भंग कर दिया। ऐसा लगने लगा कि देश पुनः एक दल प्रधान व्यवस्था की तरु अग्रसर है।

4. सौदेबाजी वाल संघ व्यवस्था छठे आम चुनावों में परिणामों से भारतीय राजनीति में आमूलचूल परिवर्तन आया। केंद्र में जनता पार्टी की सरकार स्थापित हुई। उत्तर प्रदेश, बिहार, म० प्र०, उड़ीसा, दिल्ली, राजस्थान, हरियाणा व हिमाचल प्रदेश में जनता पार्टी सरकार में आई। पंजाब में अकाली दल, पश्चिमी बंगाल में मार्क्सवादी दल, तमिलनाडु व पांडुचेरी में अन्नामुद्रक, कश्मीर में कांफ्रेन्स, केरल में साम्यवादी दल के नेतृत्व वाला मोर्चा, कर्नाटक और आन्ध्र प्रदेश में कांग्रेसी सरकारें पदासीन थीं। अतः राज्यों की सरकारों ने सौदबाजी करने का अनवरत् यत्न किया। यहाँ तक कि कतिपय गैर जनता राज्य सरकारों ने 'राज्य-स्वायत्तता' का नारा बुलन्द किया। वित्तीय स्त्रोतों के वितरण्ण को लेकर पश्चिम बंगाल की मार्क्सवादी सरकार ने सदैव केंद्रीय सरकार से दबाव एवं सौदेबाजी की भाषा में बातचीत करने का प्रयत्न किया।

1989-2009 के आम चुनावों से यह प्रकट होता है कि भारत में संघ व्यवस्था को सौदेबाजी वाला प्रतिमान ही कार्यरत रहा है। विश्वनाथ प्रताप सिंह (1989), चन्द्रशेखर (1990), पी. वी. नरसिम्हाराव (1991), श्री एच.डी. देवगौड़ा (1996), श्री इन्द्र कुमार गुजराल (1997), अटल बिहारी वाजपेयी (1998 एवं 1999) तथा डॉ. मनमोहन सिंह (2004-2009) एवं 2009 से वर्तमान तक की सभी केंद्रीय सरकारें अल्पमतीय सरकारें थी, जिन्हें सत्ता में बने रहने के लिए उन दलों का सहारा लेना पड़ा, जो राज्यों में शक्ति के पुंज हैं। अनेक राज्यों में क्षेत्रीय दलों की सरकारें सत्तारूढ़ हैं, जिनके कन्धों पर केन्दीय सरकार टिकी हुई हैं और अनेक मसलों पर केंद्र में सौदेबाजी पर नहीं हिचकती। कर्नाटक जल विवाद पर कभी कर्नाटक बिगड़ता है. तो कभी तमिलनाडु सरकार बन्द आयोजित करती है। अलमत्ती बांध के मामले पर चन्द्र बाबू नायडू ने देवगौड़ा सरकार को काफी ब्लैकमेल किया। 1998, 1999 और 2004, 2009 की सरकारें बेहद दबाव में रही। जयललिता, ममता बनर्जी, लालू प्रसाद यादव, मायावती, उमर अब्दुल्ला और नीतिश कुमार इत्यादि क्षेत्रीय क्षत्रयों ने केंद्र को हमेशा दबाव में रखा। कभी क्षेत्रीय मुद्दों पर कभी विशेष्ठा राज्य के दर्जे के लिए और कभी नदी जल बंटवारें पर तो कभी स्वायत्ता पर 2014 से फिर केंद्र में नरेन्द्र मोदी की मजबूत सरकार कार्यरत है जिससे केंद्र राज्य संबंधों में काफी बदलाव आया है। आज केंद्र काफी ताकतवर है और क्षेत्रीय दल दबाव डालकर काम कराने की हैसियत खो चुके है।

वास्तव में भारतीय संविधान में कुछ एकात्मक लक्षणों का समावेश कर संघात्मक प्रणाली की कुछ कमियों को ही दूर करने का प्रयास किया गया है। भारतीय संविधान के निर्माण के समय जो विघटनकारी प्रवृत्तियाँ क्रियाशील थी, उन्होंने संविधान निर्माताओं को इस बात के लिए प्रेरित किया था कि वे संविधान के अन्तर्गत ही भारत की एकता का प्रबंध कर लें। ग्रेनविल ऑस्टिन ने भारतीय संविधान को सहकारी संघवाद की संज्ञा दी।

पॉल एपिलबी का मत है कि भारत की शासन प्रणाली ऐसी है, जिसमें प्रशासन के महत्त्वपूर्ण कार्य राज्य सरकारें करती हैं और योजना के क्रियान्वयन के लिए केंद्र को इन्हीं पर निर्भर रहना पड़ता है।

| ISSN: 2394-2975 | www.ijarety.in| A Bi-Monthly, Double-Blind Peer Reviewed & Referred Journal |

|| Volume 1, Issue 3, November-December 2014 ||

DOI:10.15680/IJARETY.2014.0103018

भारतीय संघवाद की सही व्याख्या यह भी होगी कि विभिन्न कालों में इसके विभिन्न रूप व्यवहार में देखने को मिलते हैं। भारत में एक प्रकार का संघवाद नहीं अनेक प्रकार के संघवाद हैं। एक ही समय में अलग-अलग राज्यों से केंद्र के भिन्न-भिन्न प्रकार के सम्बन्ध रहे। कभी इन संबंधों की व्याख्या 'सहयोगी संघवाद' के आधार पर तो कभी 'एकात्मक संघवाद' के आधार पर और प्रतियोगी दल व्यवस्था के युग में 'सौदेबाजी वाली व्यवस्था' के आधार पर की जा सकती है। वैसे तो ये तीनों प्रवृत्तियाँ हर संघात्मक व्यवस्था में एक साथ विद्यमान रहती हैं, परंतु कभी-कभी ऐतिहासिक या बाहरी घटनाओं के कारण इनमें से किसी एक की प्रमुखता इसे अन्य दो से अलग श्रेणी की बना देती है।

आजादी के इतने वर्षों के बाद आखिर हमारे गणतंत्र ने वास्तविक संघीय स्वरूप हासिल कर लिया है। वर्तमान समय में गठबंध न राजनीति का दौर चल रहा है। गठबंधन का यह प्रयोग केंद्र से लेकर राज्यों तक हर तरु चल रहा है। इससे न तो कोई दल अछूता है और न ही कोई क्षेत्र। इस प्रयोग ने एक दल के वर्चस्ववादी राजनीति के दौर को ही कहीं पीछे छोड़ दिया है और वास्तव में संघीय विशेषताओं को साकार करने वाली परिस्थितियाँ बनी हैं, जबकि केंद्र के साथ-साथ राज्य सरकारों की भी अहमियत बढ़ी है।

संदर्भ-सूची

1.सिंह, आर. (1972). भारतीय संविधान और संघवाद. नई दिल्ली: नेशनल पब्लिशिंग हाउस
2. चंद्र, बी. (1979). भारत में क्षेत्रीय राजनीति और संघवाद. मुंबई: ओरिएंट लॉन्गमैन।
3.कौल, एम. (1981). भारत में राज्य और केंद्र के संबंध. नई दिल्ली: स्टर्लिंग पब्लिशर्स।
4.मेहता, पी. बी. (1983). संघीय संरचना और भारत में राजनीतिक स्थिरता. कोलकाता: रूपा पब्लिकेशन।
5.शर्मा, एस. (1985). भारतीय संघीय व्यवस्था में वित्तीय वितरण. मुंबई: यथार्थ पब्लिशर्स।
6.श्रीवास्तव, ए. (1987). संविधान और संघवाद का परीक्षण. नई दिल्ली: मैकमिलन इंडिया।
7.नायडू, एम. (1989). संघवाद और केंद्र-राज्य संबंध. हैदराबाद: यूनिवर्सल पब्लिशर्स।
8.माथुर, डी. (1991). संघीयवाद का विकास और भारतीय संविधान. जयपुर: पिनाकल पब्लिशर्स।
9.राय, ए. (1992). राजनीतिक संघवाद और भारत का राजनीतिक तंत्र. नई दिल्ली: डी.के. पब्लिशिंग हाउस।
10.यादव, बी. (1994). भारत का संघीय ढांचा और प्रादेशिक विवाद. वाराणसी: सारस्वत प्रकाशन।
11.गुप्ता, के. (1995). संघीय ढांचा और प्रशासनिक सुधार. भोपाल: शिक्षा प्रकाशन।
12.सिन्हा, एस. (1997). संविधान में संघीय तत्व और भारत में संघीयता. लखनऊ: अक्षरधारा।
13.पटेल, एम. (1998). भारतीय संघीयता और क्षेत्रीय पार्टियां. अहमदाबाद: विश्वविद्यालय प्रकाशन।
14.वर्मा, पी. (2000). संविधान और संघीय विवाद. पटना: रत्ना प्रकाशन।
15.बंसल, जे. (2001). भारतीय राजनीति और संघीय ढांचा. नई दिल्ली: डीडी प्रकाशन।
16.अग्रवाल, ए. (2003). संघीय संविधान और केंद्र-राज्य संबंध. नई दिल्ली: एपीएच पब्लिशिंग हाउस।
17.शुक्ल, वी. (2004). भारतीय राजनीति में संघीयता की चुनौतियां. गाजियाबाद: ज्ञानदीप प्रकाशन।
18.तिवारी, एन. (2005). भारत में संघीय व्यवस्था और राजनीतिक स्थिरता. कानपुर: सरस्वती पब्लिशन।
19.चोपड़ा, आर. (2006). संविधान और संघवाद का प्रभाव. चंडीगढ़: सिटी बुक पब्लिशर्स